# संतान : जीवन-चक्र का दिव्य आरम्भ

**सनातन धर्म में मानव जीवन को सोलह संस्कारों से संस्कारित एक दिव्य जीवन-यात्रा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इन संस्कारों में पाणिग्रहण (विवाह) संस्कार का वास्तविक उद्देश्य केवल दाम्पत्य-सुख प्राप्त करना नहीं, बल्कि धर्म, संस्कृति और वंश की अखंड परंपरा को आगे बढ़ाना है। इसी पाणिग्रहण संस्कार से जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है और संतान के जन्म के साथ सृष्टि का वही सनातन जीवन-चक्र पुनः गतिमान हो जाता है।**

**जब एक शिशु जन्म लेता है, तब केवल उसका ही जन्म नहीं होता, बल्कि एक स्त्री माता और एक पुरुष पिता के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में संतान को केवल परिवार का नया सदस्य नहीं, बल्कि धर्म, संस्कार और जीवन की निरंतरता का सजीव आधार माना गया है।**

भारत देश में हर दस विवाहित जोड़ों में से एक निःसंतानता की समस्या से ग्रसित है। यह केवल एक चिकित्सीय आंकड़ा नहीं, बल्कि लाखों परिवारों की भावनात्मक पीड़ा का प्रतिबिंब है।

**हमारे भीतर दो मूलभूत इच्छाएं होती हैं पहली पुत्रेषणा, अर्थात् संतान प्राप्ति की इच्छा और दूसरी वित्तेषणा अर्थात् धन अर्जित करने की इच्छा। ये दोनों इच्छाएं एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका परिवार बढ़े और उस परिवार के पालन-पोषण के लिए उसके पास पर्याप्त साधन हों। धन का वास्तविक प्रयोजन केवल स्वयं का सुख नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ी के जीवन का निर्माण है।**

## संतान: जीवन की निरंतरता का प्रतीक

संतान केवल परिवार में एक नए सदस्य का आगमन नहीं है। वह जीवन की निरंतरता का प्रतीक है। इसी कारण पुत्रेषणा को मनुष्य की सबसे स्वाभाविक इच्छाओं में स्थान दिया गया है। शरीर नश्वर है, पर जीवन की धारा रुकनी नहीं चाहिए। इसी भावना से कहा गया है **'आत्मरक्षा परमो धर्मः।' आत्मा अपने अस्तित्व को निरंतर बनाए रखना चाहती है।** जब माता-पिता इस संसार से विदा हो जाते हैं, तब उनकी संतान ही उनके अस्तित्व, उनके संस्कार और उनके स्वप्नों का प्रतिनिधित्व करती है।

संतान के जन्म के साथ केवल एक शिशु जन्म नहीं लेता, बल्कि एक पुरुष पिता बनता है और एक स्त्री माता बनती है। यही वह क्षण है, जहां दाम्पत्य का वास्तविक परिपक्व होना आरम्भ होता है।

## दाम्पत्य की परिपक्वता

विवाह का प्रथम चरण पति-पत्नी के परस्पर प्रेम का होता है, किन्तु संतान के जन्म के बाद वही सम्बन्ध उत्तरदायित्व में परिवर्तित हो जाता है। अब दोनों मिलकर एक नई सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं। वे अपने दायित्व बांटते हैं, एक-दूसरे का सहयोग करते हैं, त्याग करना सीखते हैं और अपने सुख से अधिक संतान के भविष्य को महत्त्व देने लगते हैं। वास्तव में संतान दाम्पत्य को परिपक्व बनाती है।

## भारतीय संस्कृति में संतान: धर्म का आधार

इसी कारण भारतीय संस्कृति में संतान को केवल जैविक उपलब्धि नहीं, बल्कि धर्म का आधार माना गया। हमारे यहां संतान प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ की परंपरा रही है।

वैवस्वत मनु, जिन्हें वर्तमान मन्वंतर का आदि पुरुष माना जाता है, संतान की इच्छा रखते थे। उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के मार्गदर्शन में मित्र-वरुण यज्ञ का आयोजन किया। मनु योग्य पुत्र चाहते थे जिससे उनका वंश आगे बढ़े, जबकि उनकी पत्नी श्रद्धा के मन में पुत्री की इच्छा थी। यज्ञ के समय उन्होंने गुप्त रूप से होतृ ऋषि से कन्या प्राप्ति की

कामना की। समय आने पर एक अत्यंत सुंदर कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम इला रखा गया।

मनु चिंतित हुए, क्योंकि यज्ञ पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया था। तब महर्षि वशिष्ठ ने अपने तपोबल तथा भगवान विष्णु की कृपा से इला को पुरुष बना दिया। वही आगे चलकर सुद्युम्न कहलाए। यह प्रसंग महाभारत में वर्णित है।

यह कथा हमें केवल एक चमत्कार नहीं बताती, बल्कि यह समझाती है कि भारतीय संस्कृति के गृहस्थ जीवन में संतान का महत्त्व कितना गहरा था। वंश की निरंतरता को धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया।

## संतान-प्रेम: सर्वोच्च निःस्वार्थ प्रेम

प्रेम की वास्तविक अनुभूति उस समय होती है, जब संतान का जन्म होता है। उससे पूर्व का प्रेम प्रायः व्यवहार पर आधारित होता है। लेन और देन का, अपेक्षाओं और प्रत्याशाओं का। किंतु **संतान के साथ जो प्रेम होता है, वह अटूट होता है। वहां कोई शर्त नहीं होती, कोई प्रतिफल की अपेक्षा नहीं होती; वहां केवल मुक्त भाव से देना होता है। माता-पिता अपना समय, अपना सुख, अपना श्रम और अपना जीवन तक संतान के लिए समर्पित कर देते हैं।**

श्रीकृष्ण हमारे धर्म में प्रेम के सर्वोच्च प्रतीक हैं और प्रेम का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप माता-पिता और संतान के संबंध में ही प्रकट होता है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण का बाल स्वरूप बाल गोपाल का सनातन धर्म में बहुत महत्व है। श्रीकृष्ण का बाल स्वरूप मात्र पूजन-साधना नहीं है, बल्कि उस दिव्य प्रेम और उत्तरदायित्व को जीवन में धारण करना है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शास्त्र केवल संतान की नहीं, बल्कि दिव्य संतान की कामना करते हैं। वेदों की प्रार्थना है कि संतान तेजस्वी, आयुष्मान, धर्मपरायण, विद्वान और कुल का गौरव बढ़ाने वाली हो।

**इसीलिए भारतीय परंपरा में यह कहा गया है कि केवल जन्म देना पर्याप्त नहीं है; संतान को संस्कार देना ही वास्तविक मातृत्व और पितृत्व है। शास्त्रों का उद्देश्य ऐसी संतान है जो माता-पिता के लिए ही नहीं, समाज और धर्म के लिए भी कल्याणकारी सिद्ध हो।**

आज चिकित्सा विज्ञान ने बहुत प्रगति कर ली है। महंगे से महंगे उपचार केंद्र और आईवीएफ जैसी आधुनिक तकनीकें निःसंतानता के उपचार का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। वे प्रयास कर सकती हैं, साधन उपलब्ध करा सकती हैं; परंतु सफलता का अंतिम आशीर्वाद तो गोपाल जी की कृपा से ही प्राप्त होता है। जब पुरुषार्थ के साथ ईश्वर की अनुकंपा जुड़ जाती है, तभी जीवन में संतान रूपी दिव्य प्रसाद का आगमन होता है।

दूसरी बात, ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण बाल स्वरूप गोपाल केवल निःसंतान दंपत्तियों के लिए ही है। जिनके घर में संतान है, परंतु वह सन्मार्ग पर नहीं चल रही है, जिनके संस्कार, अध्ययन, व्यवहार या जीवन-दृष्टि को लेकर माता-पिता चिंतित हैं, वे भी श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप गोपाल से लाभान्वित हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप गोपाल के पूजन का उद्देश्य केवल संतान की प्राप्ति नहीं, बल्कि संतान के जीवन में सद्बुद्धि, सदाचार, संस्कार और ईश्वर के प्रति अनुराग का जागरण भी है। इसलिए यह साधना प्रत्येक माता-पिता के लिए समान रूप से कल्याणकारी मानी गई है।

## संतान गोपाल साधना का वास्तविक भाव

संतान गोपाल साधना का भी यही संदेश है। यह केवल संतान प्राप्ति की साधना नहीं है, बल्कि स्वयं को उस योग्य बनाने की साधना है कि हम एक नई चेतना का स्वागत कर सकें। संतान ईश्वर की सृष्टि है, इसलिए उसका पालन-पोषण भी ईश्वर द्वारा सौंपा गया उत्तरदायित्व है।

**जब घर में संतान आती है, तब जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ होता है। पति और पत्नी अब केवल दो व्यक्ति नहीं रहते; वे सृष्टि के सह-निर्माता बन जाते हैं। उनका प्रेम उत्तरदायित्व में बदलता है, उनका जीवन केवल अपने लिए नहीं रहता और उनका प्रत्येक कर्म आने वाली पीढ़ी के निर्माण का आधार बन जाता है।**

यही संतान गोपाल साधना का वास्तविक भाव है। संतान केवल जन्म न ले, बल्कि उसके माध्यम से माता-पिता का भी आध्यात्मिक और भावनात्मक पुनर्जन्म हो।

संतान बुढ़ापे की लाठी है, पर उससे भी अधिक हमारा ही प्रतिबिंब है। हम अपनी संतान में स्वयं को पुनः जन्म लेते हुए देखते हैं। हमारे संस्कार, हमारा प्रेम, हमारे स्वप्न और हमारा अस्तित्व उसी के माध्यम से आगे बढ़ता है।